THE TIMES OF INDIA

Date: 20-10-18

Political will – as opposed to political fixes – needed to reform higher education in India

Sandeep Sancheti , [The writer is Vice-Chancellor of SRM Institute of Science and Technology and President, Association of Indian Universities.]

The political debate between right and left on the status and future of India's higher education, or for that matter the recent attempt to replace the UGC with another body called the Higher Education Commission of India, is unlikely to make a significant difference in higher education unless the fundamental fault lines are first identified and rectified. For this to happen political will – as opposed to political fixes – is required, at the level of both Centre and states.

For far too long education has been given short shrift to the great detriment of India's developmental goals. Putting out the slogan that by 2020 the Gross Enrolment Ratio is aimed at 30% from the current 20% is not necessarily going to give India's higher education a shot in the arm. Mere numbers without addressing concerns of quality is not going to work – it will only wreck the system more. If numbers alone were to matter, how can one explain the fact that India, with about 900 odd universities and thousands of colleges and institutes, cannot even put out one in the global top 100? China has managed to get into this chart and a tiny country like Singapore shares the honours.

The inadequacies of the higher education system of India has seen an annual exodus of over 100,000 young minds to institutions in North America, Europe and the Asia Pacific; and this trend will continue. A new trend in the last few years has been that Indian students are opting to go overseas for undergraduate studies as opposed to postgraduate studies.

The answer is simple yet proving extremely difficult: provide adequate resources at home. Is there a problem with infrastructure? Are we putting out graduates the market doesn't require? Is sufficient attention being paid to research and publications? In addition to academic fine tuning and relevance there is the obvious need to rope in corporate and business houses very early on by their involvement in curriculum and syllabus, both for design and delivery.

There is no doubt that industry-academia collaboration is a two way street and a win-win scenario. The focus of higher education must also be on research, again with a focus on quality. India is not "backward" in research, but proper areas in science, technology, social sciences and humanities will have to be identified and resources channelled to keep up with demand.

The bias of the Centre in allocation of resources to central and premier institutions is for all to see. Statistics speak of some 150 centrally funded institutions cornering more than 90% funding from the HRD ministry, but these institutions are said to account for around 6% of students in higher education. The notion that private institutions are awash with funds is as wrong as it is naive, for the simple reason

that these institutions have to constantly pump money in for infrastructure and upgrading existing facilities in order to maintain their premier status among educational institutions and still compete for ranking status that would include government funded institutions.

Higher education in India does not have the luxury of time in a fast changing world. Western countries owe their development to first rate educational institutions that combine academics and research. But quality education at universities does not happen in a vacuum – it has to be nurtured at schools to begin with.

In the US, for example, public schools run by local governments are as good, if not in some cases better than private schools. Wealth distribution in India being what it is, there is naturally the tendency to look up to government or corporation schools to cater to the needs of young kids. But these schools lack in almost everything – from teachers, classrooms, black-boards and toilet facilities.

The biggest impediment to quality schools, colleges and universities at the government level is the cancer of corruption – lesser and unqualified teachers enter the system through corrupt means. With the wheels of education being greased by corruption, where is the scope for quality in higher education? It is time for us to put our feet up, take a deep breath and look at education – higher education included – in a holistic fashion rather than through the lens of narrow and partisan political interest.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 20-10-18

चौथी बार अपनी बारी

टी. एन. नाइनन

इस हफ्ते चौथी औद्योगिक क्रांति केंद्र के उद्घाटन समारोह में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि चौथी क्रांति में भारत का योगदान समूचे विश्व को 'स्तब्ध' कर देगा। यह भी कि भारत 'स्थानीय समाधान' से 'वैश्विक अनुप्रयोग' की तरफ बढ़ रहा है। हालांकि हम इसे मोदी का शब्दाडंबर कह सकते हैं लेकिन उनकी बात में दम है।

चौथी औद्योगिक क्रांति व्यापक शब्दावली है जिसमें इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आईओटी) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता से लेकर 3डी प्रिंटिंग एवं ब्लॉकचेन और विशिष्ट सामग्री और नैनो तकनीक से लेकर स्वायत्त वाहन और 5जी संचार तकनीक तक शामिल हैं। यह क्रांति डिजिटल तकनीक और भौतिक दुनिया को एक साथ लाकर उत्पादों एवं सेवाओं का नया दायरा बनाने की कोशिश है। लेकिन भारत इनमें से अधिकांश क्षेत्रों में अग्रणी नहीं है। वैसे भारत और यहां के लोग उदीयमान डिजिटल-भौतिक विश्व में अपना योगदान शुरु कर चुके हैं।

थॉलान्स सर्विसेज ग्लोबलाइजेशन सूचकांक के मुताबिक भारत शीर्ष 10 डिजिटल देशों की सूची में सबसे ऊपर है। मोबाइल डेटा के उपयोग में भारत की भूमिका वैश्विक नेतृत्व की हो चुकी है, आधार प्रत्येक नागरिक को विशिष्ट पहचान मुहैया कराने में सफल रहा है और वीजा एवं मास्टरकार्ड जैसी वैश्विक कार्ड कंपनियों की तुलना में रुपे कार्ड का प्रयोग

एवं स्वीकार्यता बढ़ी है। ये प्लेटफॉर्म कम लागत और व्यापक फलक का समावेश हैं जो भारतीय बाजारों को परिभाषित करते हैं। सरकार और कारोबारी संस्थान अपने नागरिकों एवं उपभोक्ताओं को क्लॉउड-आधारित उत्पाद एवं सेवाएं मुहैया कराने के लिए इन प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल कर सकते हैं। जीएसटी प्रणाली में पंजीकृत एक करोड़ कारोबारी प्रतिष्ठानों के बहुत बड़े हिस्से के पास संस्थागत ऋण तक पहुंच नहीं है।

नई तकनीक एवं जीएसटी नेटवर्क जैसे डेटा प्लेटफॉर्म पर एक करोड़ प्रतिष्ठानों का पंजीकरण और कंपनी पहचान संख्या प्रणाली लागू होने और पब्लिक क्रेडिट रजिस्ट्री के लिए रिजर्व बैंक के समर्थन जैसे कदम वित्तीय प्रणाली की पारदर्शिता सुधारने में काफी मददगार हो सकते हैं। इसका मतलब है कि कोई क्रेडिट इतिहास या बड़ी परिसंपत्ति न होने पर भी छोटे प्रतिष्ठान अपने नकदी प्रवाह के आधार पर कर्ज ले सकते हैं। यह लाखों छोटे कारोबारी संस्थानों का कायांतरण कर सकता है। अगर क्लॉउड-आधारित प्लेटफॉर्म सार्वजनिक फलक में रखे जा सकते हैं तो उन पर आधारित नए कारोबार भी बनाए जा सकते हैं। उबर ने जीपीएस प्रणाली के उपयोग से इसे साबित किया है। बेंगलूरु की फर्म आईस्पर्ट चिकित्सा सेवाओं के लिए ऐसा ही एक प्लेटफॉर्म बना रही है।

आईस्पर्ट के शरद शर्मा बताते हैं कि कम लागत एवं व्यापक स्तर पर सेवा मुहैया कराने वाले ऐसे प्लेटफॉर्म पर आधारित कारोबार नई क्रांति में भारत को अग्रणी बना सकते हैं। डिजिटल बैंकिंग पहले से ही हकीकत बन चुकी है जबकि चेन्नई की एक फर्म का क्लॉउड-आधारित बिज़नेस सॉफ्टवेयर जोहो छोटे कारोबारियों को किफायती समाधान मुहैया करा रहा है जो ओरेकल की अग्रिम लागत के चलते वंचित थे। रणनीतिक (आलोचक इसे राष्ट्रवादी कहेंगे) आकलन पहले से चल रहे कुछ कार्यों को स्थापित करता है। एक धारणा यह है कि प्रमुख डेटा प्लेटफॉर्म पर नियंत्रण का अभाव संघर्ष की स्थिति में देश के लिए संवेदनशील हो सकता है। अमेरिकी आपत्ति के बावजूद डेटा को स्थानीय स्तर पर रखने के लिए कहने की यही वजह हो सकती है।

अमेरिकी नौवहन प्रणाली जीपीएस के विकल्प के तौर पर उपग्रह-निर्देशित प्रणाली 'नाविक' का विकास ऐसी ही सोच का नतीजा है। जहां संभव हो, वहां चीन की नकल करने का लोभ भी है। चीन ने गूगल को किनारे रखते हुए अपने सर्च इंजन बैदू का विकास किया और अंतरराष्ट्रीय क्रेडिट कार्ड कंपनियों को परे रखते हुए अपने यूनियनपे को बढ़ावा दिया। चीन ने इलेक्ट्रिक बसों के मामले में जिस तरह कामयाबी हासिल की, क्या घरेलू बाजार तक पहुंच का लाभ अन्य क्षेत्रों में भी भुनाया जा सकता है? हमें इंतजार करना होगा। एक विचार यह है कि घरेलू चुनौतियों से निपटने के लिए विकसित प्लेटफॉर्म अफ्रीका के उन देशों के लिए मुफीद हो सकते हैं जिनके लिए पश्चिमी विकल्पों का इस्तेमाल काफी महंगा है। विश्व बैंक ने मोरक्को को संशोधित आधार प्रणाली की तर्ज पर विशिष्ट पहचान प्रणाली शुरू करने के लिए पिछले साल कर्ज दिया था। इस बिंदु पर मोदी की स्थानीय समाधानों के वैश्विक अनुप्रयोग की बात समीचीन लगती है।

दैनिक भास्कर

Date: 20-10-18

अयोध्या में मंदिर निर्माण पर भागवत के उद्‌बोधन का अर्थ

संपादकीय

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख मोहन भागवत ने विजयादशमी के मौके पर होने वाले अपने संगठन के सांस्कृतिक कार्यक्रम में आगामी विधानसभा और लोकसभा चुनाव की रणभेरी बजा दी है। उन्होंने एक तरफ देश की सबसे बड़ी अदालत को सीख दी है कि वह धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करे तो दूसरी ओर सरकार को भी कह दिया है कि वह अदालत के फैसलों का इंतजार किए बिना कानून लाकर अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण करे। हालांकि, उन्होंने यह भी कहा है कि वे सुप्रीम कोर्ट के फैसलों का सम्मान करते हैं लेकिन, सबरीमाला के फैसले में परम्परा टूटी है और लोग आहत हैं इसलिए वे विरोध कर रहे हैं। अगर अदालत धर्माचार्यों से पूछकर इस मामले में फैसला लेती तो शायद ऐसा नहीं होता। देखना यह है कि उनके इस सुझाव का संविधान से बंधी कार्यपालिका और देश की सर्वोच्च न्यायपालिका कैसे सम्मान करती है।

इसके बावजूद यह सवाल बड़ा है कि अगर कोई मामला अदालत में लंबित है तो संसद उस पर कानून कैसे बना सकती है या केंद्र सरकार उस पर कैसे अध्यादेश ला सकती है। अगर सरकार या संसद ऐसा करती है तो यह संविधान के प्रावधानों और उसकी भावना का उल्लंघन होगा। इसके बावजूद अगर भागवत कह रहे हैं कि राममंदिर का निर्माण इस देश के सभी लोग चाहते हैं, राम सिर्फ हिंदुओं के नहीं पूरे देश के हैं और उनके मंदिर निर्माण से देश में सौहार्द का निर्माण होगा तो उन्हें सौहार्द निर्माण का प्रयास करना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने भी पहले ही कहा था कि अच्छा हो कि दोनों पक्ष अदालत के बाहर ही इस मामले का समाधान कर लें। तब दोनों पक्ष तैयार नहीं हुए और मामला अदालत में शुरू हुआ। अब जबकि दस दिन बाद सुनवाई आरंभ होने वाली है तो इस तरह के संबोधन में संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता पर आंच आती है। जहां तक धर्माचार्यों से पूछकर धार्मिक मामलों में फैसला लेने का सवाल है तो सुप्रीम कोर्ट जब इस्लाम के आवश्यक तत्व को तय करने का काम किसी मौलवी से पूछ कर नहीं करता तो मंदिर की पूजा पद्धति के बारे में कैसे करे। इसलिए हमें संविधान के तहत चलने वाली कानून की प्रक्रिया की गति समझनी होगी और उसके प्रति आदर और धैर्य दिखाना होगा।

दैनिक जागरण

Date: 20-10-18

यौन शोषण के खिलाफ मुखर हों

एनके सिंह, (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

संविधान सभा में 30 दिसंबर, 1948 को जब मंत्रिमंडल की सामूहिक जिम्मेदारी और राष्ट्रपति द्वारा हर मंत्री को अनुसूची (3) में वर्णित प्रारूप के अनुरूप शपथ दिलाने की बाध्यता और मंत्रियों के ज्ञात नैतिक अनाचरण के मुद्दों पर चर्चा हो रही थी तब एक अखबार में यह खबर छपी थी कि मंत्रिमंडल का एक सदस्य ब्लैकमेल के अभियोग में सजा पा चुका है, लेकिन तत्कालीन महाराजा ने उसे अपराध मुक्त घोषित कर दिया था। संविधान सभा के समक्ष प्रश्न यह था कि

क्या ऐसा व्यक्ति मंत्री बनाया जाना चाहिए? केटी शाह, महबूब अली सहित अनेक सदस्य अपने-अपने संशोधन प्रस्ताव पर बोल रहे थे। मंत्रियों के अतीत के आचरण को लेकर संविधान सभा काफी गंभीर थी। अंत में यह तय किया गया कि मंत्रिपरिषद सामूहिक जिम्मेदारी पर ही चलेगी, लेकिन मंत्री की शपथ का प्रारूप उसे व्यक्तिगत और नैतिक रूप से बाध्य करेगा। लिहाजा उसकी शपथ में शुद्ध अंत: करण शब्द शामिल किया गया। यह अन्य किसी भी संवैधानिक पद के लिए नहीं है-यहां तक कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के लिए भी नहीं।

अगर एमजे अकबर सरीखा आरोप किसी संसद सदस्य पर लगा होता तो सामूहिक नेतृत्व के सिद्धांत से पूरे मंत्रिमंडल पर आंच न आती, क्योंकि उसने शुद्ध अंत:करण की शपथ नहीं ली होती। अगर अंत:करण दूषित है तो वह व्यक्ति का मौलिक व्यक्तित्व बताता है जो समय के साथ बदलना तब तक असंभव है जब तक वह अंगुलीमाल न हो। संभव है अकबर पर लगे आरोप अदालत में सही सिद्ध न हों, क्योंकि संपादक के तौर पर उन्होंने अपने कार्यालय में सीसीटीवी कैमरा तो लगा नहीं रखा होगा और लगाया भी होगा तो उसे नियंत्रित भी वही करते होंगे। अगर वह मंत्री पद पर बने रहते तो उनके व्यवहार को लेकर उभरी शंका पूरे मंत्रिमंडल और प्रधानमंत्री के लिए एक बोझ बन जाती।

अपराध की दो किस्में हैं-एक, नैतिक अनाचरण और दूसरा आपराधिक दोष। हो सकता है कि किसी महिला को आपत्तिजनक तरीके से घूरना लोकलाज के कारण महिलाओं के आगे न आने की मजबूरी से अपराध-दोष न बना हो, लेकिन आज है। हिंसक या कामुक व्यवहार नैतिक पतन की श्रेणी में आता है। ऐसा दो सौ या दो हजारसाल पहले भी था। समय के साथ मान्यताएं बदलीं, सामाजिक व्यवहार बदला और महिलाएं घर की चौखट तक सीमित रहने के बजाय सीईओ भी बनने लगीं। समय के साथ तकनीक भी बदली सूचना एवं संचार के माध्यम भी। इसी से संभव हुआ मी टू अभियान। आज सारी दुनिया इस अभियान से परिचित है।

शुद्ध अंत:करण काल-सापेक्ष नहीं होता। वह शाश्वत होता है। एमजे अकबर के इस्तीफा न देने के पक्ष में दो तर्क दिए गए। एक यह था कि 10-20 साल पहले के किसी आरोप के लिए किसी को आज सजा देना गलत है। दूसरा तर्क यह था कि किसी व्यक्ति के संपादक के रूप में किए गए कार्य के लिए वर्तमान में किसी राजनीतिक दल या सरकार को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। ये दोनों तर्क दरअसल कुतर्क थे। ये न तो तर्कशास्त्र के पैमाने पर खरे उतरते हैं और न ही उस शपथ के अनुरूप साबित होते हैं जिसे मंत्रीगण लेते हैं। अपराध न्याय की प्रक्रिया काल बाधित नहीं होती। अगर किसी ने 20 साल पहले हत्या की है तो न्याय प्रक्रिया उसी शिद्दत से शुरू होगी जैसे हत्या के किसी नए अपराध को लेकर शुरू होती है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि प्रजातंत्र में नैतिक आचरण को लेकर जन-अभिमत शासन की रीढ़ होता है।

इसीलिए कहा जाता है कि लोकतंत्र लोकलाज से चलता है। महिलाओं के सम्मान के सवाल पर तो लोकलाज की चिंता प्राथमिकता के आधार पर की जानी चाहिए। अकबर पर लगे आरोपों का हश्र कुछ भी हो, उनका त्यागपत्र महिला सम्मान की एक बड़ी जीत है, लेकिन यह जीत केवल मंत्री पदों पर आसीन यौन शोषण के आरोपितों के मामले में ही नहीं मिलनी चाहिए। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अकबर ने तो इस्तीफा दे दिया, लेकिन अन्य अनेक लोगों पर यौन शोषण के जो आरोप लगे हैं उनके खिलाफ मुश्किल से ही कुछ हो रहा है।

2014 में मनमोहन सरकार इसलिए नहीं गई कि प्रधानमंत्री दागदार थे, बल्कि इसलिए गई कि जन-अभिमत उसके खिलाफ हो गया था। अपराध कानून के तहत एमजे अकबर एक के बाद एक 20 महिलाओं के आरोपों के बाद भी मंत्री

बने रह सकते थे, क्योंकि उन पर लगे आरोप प्रमाणित नहीं हुए थे, लेकिन इससे मोदी सरकार की गरिमा संदेह के घेरे में आ जाती। अंत:करण नैतिकता पर आधारित होता है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं का जा सकती कि संविधान ने सामूहिक जिम्मेदारी की बाध्यता रखी है। लालू यादव केंद्रीय मंत्री बनकर एक लंबे समय तक इसी आधार पर देश की छाती पर मूंग दलते रहे कि चारा घोटाले में तब तक फैसला नहीं हुआ था, लेकिन उनका मंत्री पद पर आसीन होना व्यापक जन-अभिमत, प्रजातंत्र और संवैधानिक व्यवस्था की क्षमता पर सवाल तो खड़े ही करता रहा।

अगर एमजे अकबर मंत्री बने रहते तो ऐसे ही सवाल खड़े होते और वह सरकार के लिए परेशानी का कारण बनते। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि हो सकता है कि अकबर पर लगे आरोप गलत हों, लेकिन अगर एक के बाद एक 20 महिला पत्रकार यौन शोषण के आरोप लगाएं और वह भी यह जानते हुए कि इसके लिए उन्हें कोई सामाजिक कीमत चुकानी पड़ सकती है तो उसकी अनदेखी नहीं का जा सकती। किसी पर आरोप साबित न हों तो इसका यह मतलब भी नहीं कि वह निर्दोष साबित हुआ। इस मामले में यह भी देखें कि एमजे अकबर कथित तौर पर एक के बाद एक महिला पत्रकारों को तंग करते रहे, लेकिन पीड़ित महिलाएं समय रहते आवाज उठाने का साहस नहीं जुटा सकीं। अगर मी टू अभियान ने भारत में दस्तक नहीं दी होती तो शायद वे अभी भी मौन रहने में ही अपनी भलाई समझतीं।

इसका मतलब है कि तब ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी कि यौन प्रताड़ना का शिकार महिला पत्रकार अपनी शिकायत दर्ज करा सकें। आखिर क्या कर रहा था एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया जो सरकार के हर कदम पर प्रेस स्वतंत्रता पर हमले की बांग देने लगता है? यह सच है कि संपादक अपने पद पर आने के पूर्व शुद्ध अंत: करण से काम करने की शपथ नहीं लेता, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि इसके आधार पर उसे लंपट व्यवहार करने का लाइसेंस मिल जाता है। यही बात उन अन्य अनेक लोगों पर भी लागू होती है जो किसी पद पर आसीन होते समय मंत्रियों की तरह किसी तरह की शपथ नहीं लेते।

आज इसकी आवश्यकता है कि कार्यस्थलों में यौन शोषण के खतरे के खिलाफ एक नया कानून बने जिसमें खुद को निर्दोष सिद्ध करने की जिम्मेदारी आरोपित पर हो न कि आरोप लगाने वाली महिलाओं पर। इसकी भी जरूरत है कि मी टू अभियान बड़े शहरों से बाहर भी निकले ताकि गांव-कसबे की आम महिलाएं भी यौन शोषण के खिलाफ मुखर हों। अकबर का इस्तीफा एक शुरुआत बननी चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 19-10-18

स्त्री-शक्ति पूजन

जग्गी वासुदेव

शक्ति की पूजा धरती पर पूजा का सबसे पुराना रूप है। सिर्फ भारत में ही नहीं, बल्कि यूरोप, अरेबिया और अफ्रीका के बड़े हिस्सों में स्त्री शक्ति की पूजा होती थी। दुर्भाग्यवश पश्चिम में कथित मूर्ति पूजा और एक से ज्यादा देवों की पूजा

के सभी नामोनिशान मिटाने के लिए देवी **मंदिरों** को मिट्टी में मिला दिया गया। दुनिया के **बाकी** हिस्सों में भी यही हाल हुआ। भारत इकलौती ऐसी संस्कृति है, जिसने स्त्री शक्ति की पूजा को जारी रखा है। इसी **संस्कृति** ने हमें अपनी जरूरतों के मुताबिक अपनी देवियां खुद गढ़ने की आजादी भी दी। प्राण प्रतिष्ठा के विज्ञान ने हर गांव को अपनी विशिष्ट स्थानीय जरूरतों के अनुसार अपना मंदिर बनाने में समर्थ बनाया। दक्षिण भारत के हर गांव **में** आपको आज भी अम्मन (अम्मा) या देवी के मंदिर मिलेंगे। आजकल पुरु ष शक्ति समाज में सिर्फ इसलिए **महत्त्वपूर्ण** हो गई है क्योंकि हमने अपने जीवन में गुजर-बसर की प्रक्रिया को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

सौंदर्य या नृत्य-संगीत, प्रेम, दिव्यता या **ध्यान** की बजाय अर्थशास्त्र हमारे जीवन की प्रेरक शक्ति बन गया है। जब अर्थशास्त्र हावी हो जाता है, और जीवन के गूढ़ तथा सूक्ष्म पहलुओं को अनदेखा कर दिया जाता है, तो पौरु ष कुदरती तौर पर प्रभावी हो जाता है। ऐसी दुनिया में स्त्री शक्ति की अधीनता स्वाभाविक है। इससे भी बड़ा संकट यह है कि बहुत-सी स्त्रियों को लगता है कि उन्हें पुरु षों की तरह बनना चाहिए क्योंकि वे पौरु ष को **शक्ति** का प्रतीक मानती हैं। अगर स्त्री शक्ति नष्ट हो गई तो जीवन **की** सभी सुंदर, सौम्य, सहज और पोषणकारी **प्रवृत्तियां** लुप्त हो जाएंगी। जीवन की अग्नि हमेशा के लिए नष्ट हो जाएगी। बड़ा नुकसान है, जिसकी भरपाई करना आसान नहीं होगा।

आधुनिक शिक्षा का एक दुर्भाग्यपूर्ण नतीजा यह है कि हम अपनी तर्क शक्ति पर खरा न उतरने वाली हर चीज को नष्ट कर देना चाहते हैं। पुरु ष-प्रधान हो जाने के कारण इस देश में भी देवी पूजा बड़े पैमाने पर गोपनीय तरीके से की जाती है। अधिकांश देवी मंदिरों में मुख्य पूजा बस कुछ ही पुजारियों द्वारा की जाती है। मगर **इसकी** जड़ें इतनी गहरी हैं कि इसे पूरी तरह नष्ट नहीं किया जा सकता। नवरात्र का उत्सव ईर के स्त्री रूप को समर्पित है। दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती स्त्री-शक्ति यानी स्त्रैण के तीन आयामों की प्रतीक हैं। धरती, सूर्य और चंद्रमा या तमस (जड़ता), रजस (सक्रियता, जोश) और सत्व (परे जाना, ज्ञान, शुद्धता) की **प्रतीक** हैं।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 19-10-18

Go To Court

If RSS is unhappy with Sabarimala verdict, it must seek redress from court, not encourage protests that disrupt the pilgrimage

Editorial

The Sabarimala pilgrimage has been rocked by unprecedented violence as Hindu organisations took to the streets on Wednesday to prevent women aged between 10 and 50 from visiting the shrine. More than the woman pilgrim, the wrath of protestors has fallen on journalists, particularly women, who have been stationed at various points on the pilgrims' path to report on the journey of the faithful. While the moblisations that began immediately after the Supreme Court verdict against the legal ban on women entering the shrine were peaceful, the protests after the temple opened on Wednesday have brought Kerala to the edge. Egged on by leaders of Hindutva groups, the protestors now pose a serious threat to

social peace. The public discourse on the issue has become toxic after leaders started to publicly threaten women who expressed the desire to travel to the shrine. Against this background, RSS chief Mohan Bhagwat's reference to Sabarimala in his Vijayadashami speech is significant, and disturbing.

Bhagwat has blamed the Sabarimala verdict for the current "unrest, turmoil and divisiveness in society" in Kerala. This, he argued, is because the Supreme Court did not consider "the nature and premise of the tradition that has been accepted by society and continuously followed for years together" when it held the legal cover extended to the traditional ban on women at Sabarimala as unconstitutional. He also claimed that "the version of heads of religious denominations and faith of crores of devotees was not taken into account" and "the plea by a large section of women, which follows this tradition, was not heard". What is even more contentious than these claims is Bhagwat's provocative suggestion that Hindu society is experiencing "repeated and brazen onslaughts on its symbols of faith" and that the court order on Sabarimala was one such instance. The RSS chief must remember that a constitution bench of the Supreme Court delivered its majority verdict after hearing extensive arguments against and in favour of Sabarimala's contentious tradition by various Hindu groups that had impleaded in the case. The majority of the bench felt the ban failed the test of constitutional morality as it violated the principle of equal rights guaranteed in the Constitution to all citizens irrespective of gender. Surely, Bhagwat, who in recent times has unequivocally upheld the supremacy of the Constitution in national affairs, and other aggrieved parties, could move the Supreme Court to review its order.

Whatever be the Sangh's differences with the judgment, it must respect due process and desist from any exhortation or action that can disrupt law and order. The Court is set to hear the clutch of review petitions filed before it on the Sabarimala judgment. The state government has also initiated a dialogue to resolve the issue amicably. Sections that are restive about the SC order must join these processes to make their case, instead of taking to the streets.